इकाई 15 नगरीय केन्द्रों का उदय

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- एक शहर के वास्तविक अर्थ तथा ग्रामीण केन्द्रों से इसकी भिन्नता को समझ सकेंगे,
- उन मुख्य कारणों को जान सकेंगे जिनसे छठी शताब्दी ई. पू. के दौरान नगरीकरण हुआ,
- यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे कि उस समय किस प्रकार के नगर अस्तित्व में थे, और
- छठी शताब्दी ई. पू. में नगरीय जीवन की बहुत-सी विशेषताओं को समझ सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई. पू. से प्रारम्भ होने वाले काल में भारतवर्ष में दूसरी बार नगरों का उदय हुआ। यह नगरीकरण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि काफी लम्बे समय तक यह नगरीय व्यवस्था रही और इसी काल में साहित्य की लेखन परम्पराओं का प्रारम्भ हुआ। जैन तथा हिन्दू धर्म के कई मतों में इस परम्परा का समावेश हुआ है तथा उपरोक्त धार्मिक वर्गों के लोग इस काल से अपने धर्मों की स्थापना का काल मानते हैं। तत्कालीन साहित्य में राजग्रह, श्रावस्ती, काशी आदि नगरों के बहुत से उद्धरण मिलते हैं। बुद्ध एवं महावीर ने अधिकांशतया नगर के लोगों को ही सम्बोधित किया।

सिंधु घाटी के नगरों की समाप्ति के पश्चात् खेतिहर और घुमक्कड़ समुदाय भारत के मैदानों में बस गए। साधारण घरों वाली छोटी ग्रामीण बस्तियां हर तरफ देखी जा सकती थी। यह सब राजाओं और व्यापारियों के प्रभुत्व और बाज़ार स्थलों के कोलाहल एवं कलकल से मुक्त थीं। आपने राजा हरिश्चन्द्र का नाम तो सुना ही होगा जो अपनी सत्यनिष्ठा तथा वचनबद्धता के लिए प्रसिद्ध हैं। हम यहां पर उनकी प्रारंभिक कहानी का वर्णन कर रहे हैं जिसको ऐतरय ब्राह्मण ग्रंथ से लिया गया है। इस ग्रंथ का समय मोटे तौर पर आठवीं सदी से नवीं सदी ई. पू. के बीच का माना जा सकता है।

कहानी इस प्रकार चलती है, — राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं था। वह भगवान वरूण के पास गए और प्रार्थना की, "अगर मेरे पुत्र की उत्पत्ति हो तो उसकी बलि मैं आपको दूंगा।"

उनके यहां रोहित नाम के पुत्र का जन्म हुआ। वरूण ने उसकी बलि की मांग की। राजा ने बहुत से बहाने बनाये और बलि को टालते रहे। जब रोहित बड़ा हुआ तो हरिश्चन्द्र ने उसको बतलाया, "ओ मेरे प्रिय पुत्र, वरूण भगवान ने तुमको मुझे प्रदान किया है। इसलिए उनको मैं तुम्हारी बलि दूंगा।" "नहीं", उसने कहा और अपना धनुष लेकर वह जंगल को चला गया और एक वर्ष तक वह जंगल में घूमता रहा।

वरूण क्रोधित हो गया और हरिश्चन्द्र को दण्डित करने के लिए जलोदर रोग का अभिशाप दे दिया। रोहित ने जब यह सुना तो उसने जंगल से गांव वापस जाने का निश्चय किया। उसने छः बार गांव को वापस आने का प्रयास किया परन्तु इन्द्र ने उस पर दबाव डालकर उसको हर बार जंगल वापस जाने के लिए बाध्य किया।

सातवें वर्ष उसने सुनहसेप नाम के ब्राह्मण लड़के को उसके पिता से सौ सिक्कों में खरीद लिया। इसके पश्चात् वह हरिश्चन्द्र के गांव वापस लौट आया जहां पर सुनहसेप की भगवान वरूण के लिए बलि दी जाने वाली थी। जब सुनहसेप की बलि दी जाने वाली थी तो उसने कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया जिससे वरूण अति प्रसन्न हुए और उसको बचा लिया गया। राजा का जलोदर रोग भी समाप्त हो गया। नगरीकरण के इतिहासकार के लिए इस कहानी का यह महत्व है कि राजा हरिश्चन्द्र किसी नगर में नहीं रहते थे, न किसी छोटे कस्बे में बल्कि वह एक ऐसे गांव में रहते थे जो जंगल के समीप था। छठी शताब्दी ई. पू. आते-आते इस सब में काफी परिवर्तन हुआ। आप इकाई-14 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि राजशाही महाजनपदों के राजा एवं गण-संघों के क्षत्रिय मुखिया कोशाम्बी, चम्पा, श्रावस्ती, राजगृह और वैशाली जैसे नगरों में रहते थे। इस समय तक केवल बड़े नगर ही अस्तित्व में नहीं आए थे, किन्तु कृषि पर आधारित गांव के साथ-साथ बाज़ार केन्द्र, छोटे कस्बे, बड़े कस्बे और अन्य प्रकार की बस्तियां भी अस्तित्व में आ चुकी थी।
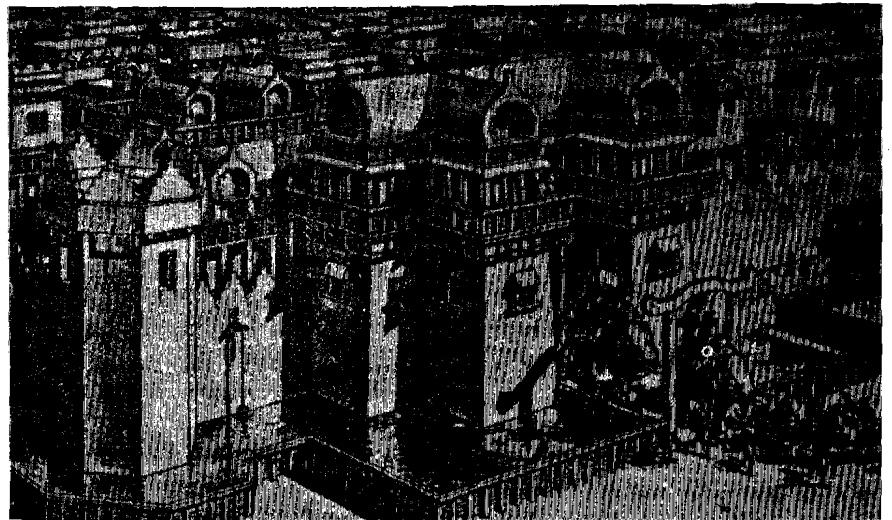
चित्र 2 प्राचीन भारत के नगर की चित्रकार की परिकल्पना

15.2 नगर केन्द्र क्या है ?

नगर केन्द्र को परिभाषित करने का प्रयास बहुत से विद्वानों ने किया है। वैसे तो किसी नगर केन्द्र को परिभाषित करना काफी सरल कार्य लगता है। लेकिन जब हम यह काम शुरू करते हैं तो यह प्रश्न काफी जटिल हो जाता है। जैसा कि कुछ विद्वानों का विश्वास है कि घनी आबादी होना नगर केन्द्र का एक लक्षण है। तथापि हम देखते हैं कि कुछ भारतीय आधुनिक गांवों की आबादी आस्ट्रेलिया के कुछ नगरों से भी अधिक है। इसी प्रकार, कुछ विद्वानों का तर्क है कि नगर केन्द्रों का आकार गांवों से बड़ा होता है। फिर भी, नगरों के आकार स्तर को निश्चित करना कठिन है। हम जानते हैं कि आधुनिक गांवों का आकार हड़प्पाकालीन

कालीबंगन जैसे नगरों से काफी अधिक है। इस प्रकार,-लोगों की संख्या या बस्ती के आकार को नगर या गांव केन्द्र को परिभाषित करने के लिए विश्वसनीय आधार नहीं माना जा सकता है। इसलिए उन कार्यों की विशेषताओं की पहचान करना महत्वपूर्ण है जिनको वे पूरा कर रहे हैं। गांव में अधिकतर लोग खाद्य उत्पादन के काम में लगे हुए होते हैं। इसलिए गांवों की सामाजिक व्यवस्था पर किसानों व खेतों की प्रधानता होती है। दूसरी ओर, नगरों में शासनकर्त्ताओं या पुजारियों या व्यापारियों की प्रधानता होती है। यह संभव है कि नगर में भी बहुत से लोग कृषि से संबंधित कार्यों में संलग्न हो। परन्तु नगर को परिभाषित करने के लिए कृषि के अतिरिक्त गतिविधियों का होना आवश्यक है।

हम उदाहरणार्थ बनारस को लेते हैं जो भारत के जीवित प्राचीनतम नगरों में से एक है। इसकी प्रसिद्धि अच्छी किस्म का चावल उत्पादन करने के कारण नहीं परन्तु एक बहुत महत्वपूर्ण तीर्थ केन्द्र होने के कारण है। बनारस सम्पूर्ण भारत के तीर्थ यात्रियों को आकर्षित करता था। ये तीर्थ यात्री मन्दिर में देवी देवताओं पर विभिन्न प्रकार के उपहार चढ़ाते थे। इस तरह से जो लोग मंदिरों के स्वामी थे वे सारे देश से आने वाले तीर्थ यात्रियों के संसाधनों को प्राप्त करने में सक्षम थे। नगर केन्द्र की दूसरी विशेषता यह है कि अपने साथ-साथ यह अपने प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली अधिकतर जनसंख्या के संबंध में भी काम करता है। इस प्रकार नगर अपनी भौतिक सीमा के बाहर रहने वाले लोगों को भी प्रशासनिक, आर्थिक और धार्मिक सेवाएं उपलब्ध करा सकता है। प्रभाव क्षेत्र की जनसंख्या के साथ यह सम्बद्धता नगर केन्द्र के लिए लाभदायक है। इसका अर्थ यह है कि शहर के निवासी प्रभाव क्षेत्र में रहने वाले लोगों के संसाधनों का प्रयोग करने में सक्षम हैं। इस कार्य को वस्तु कर या नज़राना वसूल करके किया जा सकता है। नगर में रहने वाला व्यापारी धातुओं, खनिजों और विलासिता की वस्तुओं की आपूर्ति को नियंत्रित करके ग्रामीण क्षेत्रों के संसाधनों के एक हिस्से को हड़प करने में (विनियोग करने में) सक्षम है। इसका तात्पर्य यह है कि शहरों में रहने वाले राजाओं, पुजारियों तथा व्यापारी वर्गों के पास साधारण आदमी की तुलना में अधिक धन है। ये वर्ग अपने धन का उपयोग अधिक धन, सम्मान एवं ताकत प्राप्त करने में करते हैं। अब, प्रत्येक समाज में धनी व ताकतवर लोगों के दिखावट के अपने-अपने तरीके होते हैं। कुछ समाजों में सम्पन्न लोग बड़े-बड़े महल बनाते हैं तो कुछ सुन्दर मन्दिर बनाते हैं और कुछ महाबलि यज्ञों का आयोजन करते हैं। अन्य लोगों की रुचि मूल्यवान धातुओं व पत्थरों को रखने में होती है।

राजाओं, पुजारियों और व्यापारियों तथा किसानों के अलावा नगरों में दस्तकार और कारीगर भी रहते हैं जो नगर के लिए विलासिता की चीज़ों एवं शहर से बाहर के लोगों के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इन कारीगरों को शहर के सम्पन्न लोगों की भांति विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते। उदाहरण के लिए, व्यापारी और प्रशासक काफी धनी हो सकते हैं परन्तु लुहार, राजगीर या बढ़ई गरीब ही होंगे। इस प्रकार, धनी और गरीब, दोनों की उपस्थिति नगर की एक विशेषता है।

> हम कह सकते हैं कि नगर उन स्थलों को कहा जा सकता है जहां पर आबादी का महत्वपूर्ण वर्ग खाद्य उत्पादन के अतिरिक्त अन्य दूसरी गतिविधियों में संलग्न है।

इस प्रकार की विभिन्न सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों के कारण उन लोगों में उचित तालमेल करने में कठिनाई होती है जो लोग इन गतिविधियों में व्यस्त हैं। उदाहरण के लिए, लुहार को किसान से अनाज की आवश्यकता होगी या व्यापारी को अपना माल एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को ले जाने में लुटेरों से सुरक्षा की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति में जहां प्रत्येक समूह दूसरे समूह के बिना जीवित नहीं रह सकता वहां उनकी गतिविधियों में तालमेल रखने के लिए एक केन्द्रीकृत संगठन की आवश्यकता होती है। गरीब व धनी के बीच शत्रुता पर नियंत्रण करने की आवश्यकता और नगर के उपभोग के लिए कृषि उत्पाद को गतिशील बनाने की आवश्यकता ने केन्द्रीकृत शक्ति की उत्पत्ति की संभावनाओं को पैदा किया। केन्द्रीकृत निर्णय लेने वाले गुटों की उत्पत्ति लगभग उसी समय हुई जब शक्ति पर एकाधिकार रखने

वाले गुटों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार की सामाजिक संरचना में यह तथ्य निहित है कि एक प्रकार का राज्य समाज अस्तित्व में आया।

> इस तरह कारीगरों, धनी व गरीब लोगों और प्रशासन की उपस्थिति शहरी समाज की विशेषता है।

15.3 छठी शताब्दी ई. पू. की पृष्ठभूमि

इससे पूर्व की इकाई में हमने प्राचीन भारत में महाजनपदों और केन्द्रकृत राजनीतिक प्रणालियों के उद्‌भव के विषय में बताया था। हम देख चुके हैं कि एक समय में ब्राह्मणों का एक जाति वर्ग (सूचि) में कैसे उद्‌भव हुआ और जो अनुष्ठानिक कार्य के विशेषज्ञ हो गये। फिर क्षत्रिय योद्धाओं और भू-स्वामियों का वर्ग आया जिसने क्रमिक रूप से किसानों तथा व्यापारियों पर कर लगाना प्रारम्भ किया। उत्तर वैदिक काल में सरदारों ने बलि अनुष्ठानों के अवसर पर अपनी सम्पत्ति को खर्च करना और वितरित करना प्रारम्भ कर दिया। अधिक से अधिक विशाल से विशाल स्तर पर बलि यज्ञों के आयोजन करने से सदस्यों के बीच प्रतियोगिता होने लगी जिससे कि वे अधिक से अधिक लूट, कर व नज़राना प्राप्त करने लगे। इस व्यवस्थित कृषक समाज में कृषि उत्पाद और पालतू पशु सम्पत्ति के सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीक थे। विशेष कर, कृषि उत्पाद इस प्रकार की सम्पत्ति थी जिसको साल दर साल जुताई की भूमि को बढ़ाकर और अधिक उत्पादन करने वाले कृषि के तरीकों को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता था। शासकों की अधिक से अधिक धन की लालसा ने अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने तथा चरवाहों एवं चारा खोजकर लाने वालों को बसने के लिए बाध्य किया। पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि बहुत-सी कृषि बस्तियां 6वीं शताब्दी ई. पू. से 7वीं ई. पू. के बीच अस्तित्व में आयीं। मध्य गंगा घाटी में बढ़ते हुए लोहे के औजारों का प्रयोग तथा रोपाई द्वारा की खेती ऐसे दो कारक थे जिनसे कृषि उत्पादन में वृद्धि करने में काफी मदद मिली।

लोहे का प्रयोग और रोपाई द्वारा खेती

1000 ई. पू. के आस-पास भारतीयों ने लोहे को पिघलाने की कला को सीख लिया था। आगे आने वाली तीन या चार शताब्दियों में लोहे का प्रयोग बढ़ता गया। इसलिए उज्जैन, श्रावस्ती और हस्तिनापुर से बड़ी संख्या में लोहे के उपकरण एवं औजार प्राप्त हुए हैं। विशेषकर लोहे के हथियारों का प्रयोग काफी बड़े स्तर पर होने लगा था। जिसके कारणवश क्षत्रियों तथा किसानों की शक्ति में वृद्धि हुई। क्षत्रिय वर्गों ने लोहे के हथियारों की सहायता से किसानों से अधिक धन को वसूल किया। लोहे के हथियारों ने उनकी युद्ध, विजय और लूट-पाट की भूख को और बढ़ाया।

लोहे के प्रयोग का अर्थव्यवस्था पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। लोहे की कुल्हाड़ी से जंगलों को साफ किया जा सका और लोहे की फाल वाले हल से कृषि कार्यों को करने में सुविधा हुई। यह मध्य गंगा घाटी में (इलाहाबाद और भागलपुर के मध्य का क्षेत्र) काफी उपयोगी था जहां पर रोपाई द्वारा धान की खेती की जाती थी। धान की रोपाई को भी इस काल में सीख लिया गया था। यह सर्वविदित तथ्य है कि तराई चावल की खेती वाले क्षेत्र में पैदावार गेंहू या मोटे अनाजों की परम्परागत कृषि से पर्याप्त मात्रा में अधिक थी। चावल उत्पादक मध्य गंगा घाटी में, गेंहू उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी की तुलना में अधिक अनाज का उत्पादन होता था। प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में चावल व खेतों की किस्म का बार-बार वर्णन हुआ है। यह व्यापक स्तर पर चावल की खेती की ओर निर्णायक परिवर्तन को स्पष्ट करता है। अधिक खाद्य उत्पादन के कारण जनसंख्या के बढ़ने में सहायता मिली, जिसकी अभिव्यक्ति उस समय के प्राप्त हुए पुरातात्विक साक्ष्यों में भी होती है। अधिक अन्न उत्पादन ने यह संभावना बनाई कि ऐसे सामाजिक समूह अस्तित्व में आये जो खाद्यान्न उत्पादन में लिप्त नहीं थे।

चित्र 3 रोपाई द्वारा धान की खेती

वैदिक बलि यज्ञों से तात्पर्य था कि सरदारों के द्वारा जो अतिरिक्त उत्पाद एकत्रित किया जाता था वह यज्ञों के आयोजन के समय उपहारों के रूप में चला जाता था। मध्य गंगा घाटी क्षेत्र में आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों का स्वरूप ऊपरी गंगा घाटी क्षेत्र में आयोजित होने वाले अनुष्ठानों व बलि यज्ञों से भिन्न था। जिसका अर्थ था कि जिस अतिरिक्त उत्पादन को सरदारों द्वारा एकत्रित किया जाता था वह बलि यज्ञों के अवसर पर खर्च नहीं होता था। जिन बढ़ते हुए समूहों का इस अतिरिक्त धन पर नियंत्रण था वे ही नवोदित राज्यों के शासक वर्ग बन गए और इसी धन की आधारशिला पर छठी शताब्दी ई. पू. के नगरों की उत्पत्ति हुई।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तरों पर निशान लगाइए:
   नगरीकरण के इतिहासकारों के लिए हरिश्चन्द्र की कहानी का महत्व निहित है:

   क) पुत्र रोहित की अवज्ञा में

   ख) सुनेहसेप की खरीदारी में

   ग) राजा हरिश्चन्द्र के शहर में नहीं बल्कि गांव में रहने के तथ्य में

   घ) भगवान वरूण तथा इन्द्र द्वारा खेली गई विभिन्न भूमिकाओं में

2) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए:

   i) आबादी की संख्या और बस्ती के आकार के आधार पर ग्रामीण केन्द्र से अलग नगर केन्द्र की पहचान की जा सकती है।

   ii) लोहे के औजारों के बढ़ते प्रयोग ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद की।

   iii) चावल उत्पादक मध्य गंगा-घाटी की तुलना में गेंहू उत्पादक ऊपरी गंगा घाटी अधिक खाद्य अनाजों का उत्पादन करती थी।

   iv) लोहे के हथियारों के निर्माण से शासक वर्गों की ताकत में वृद्धि हुई।

15.4 छठी शताब्दी ई. पू. के नगर

छठी शताब्दी ई. पू. के नगरों के विषय में हमारी सूचना बहुत से स्रोतों पर आधारित है क्योंकि यह वह समय है जब प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। ब्राह्मणिक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में उस समय की परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। इस काल

के बहुत से नगरों और गांवों के उत्खनन से प्राप्त विवरण हमारी जानकारी को और पुष्ट करते हैं।
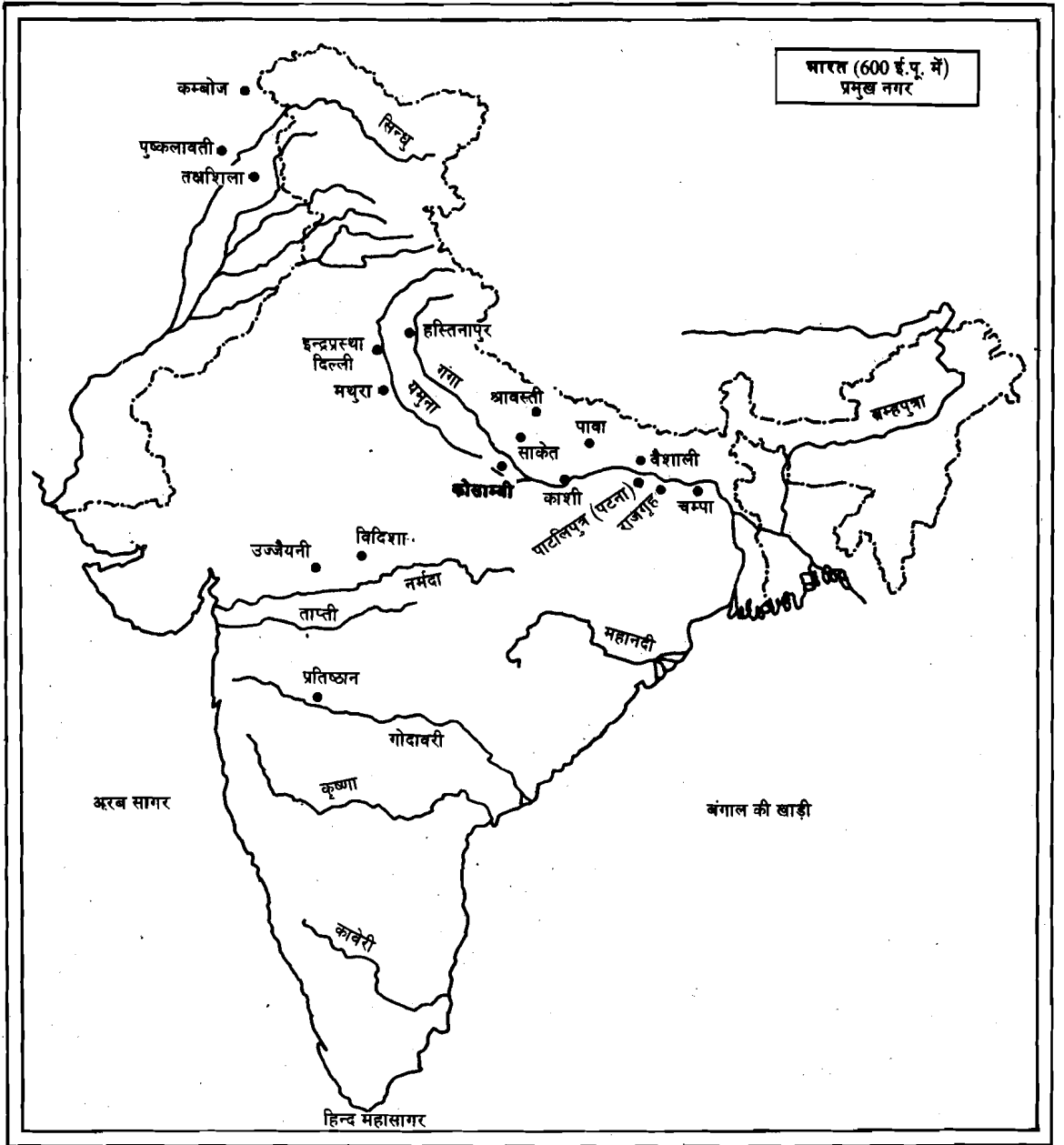
मानचित्र 2 प्रमुख नगर

15.4.1 साहित्य में नगरों और कस्बों के प्रकार

प्राचीन भारतीय साहित्य में शहरों के प्रतीक रूप में पुर, दुर्ग, निगम, नगर आदि शब्दों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है। अब हम यह देखेंगे कि प्राचीन भारतीय इनको किस प्रकार से परिभाषित करते थे।

पुर — पुर शब्द का प्रयोग प्रारंभिक वैदिक साहित्य में भी हुआ। यहां इनका उल्लेख किलेबंद बस्तियों, अस्थायी शरण स्थलों या पालतू पशुओं के बाड़ों के संदर्भ में हुआ है। बाद में इस शब्द का प्रयोग राजा के निवास स्थान और परिजनों के निवास स्थान या गण संघों के शासक वर्ग के परिवार जनों के निवास स्थल के लिए होता है। धीरे-धीरे घेरे-बंदी के अर्थ में इसका प्रचलन कम होने लगा और इसका तात्पर्य शहर या नगर से लगाया जाने लगा।

दुर्ग — यह एक और शब्द है जिसका प्रयोग राजा की घेरे-बन्द राजधानी के लिए होता था। इस घेरेबंदी के कारण नगर केन्द्र की सुरक्षा होती थी और यह आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों से अलग हो जाता था, घेरेबंदी के कारण शासक वर्गों के लिए नगर में रहने वाले लोगों के कार्यकलाप को नियंत्रित करना सरल था।

निगम — एक कस्बे के प्रतीक के रूप में इस शब्द का पाली साहित्य में खूब वर्णन हुआ है। संभवत: इसका ऐसे स्थल से आशय है जहां पर व्यापारी वर्ग के द्वारा चीजों की बिक्री एवं खरीदारी की जाती थी। वास्तव में कुछ विद्वानों का विश्वास है कि इन निगमों का विकास उन गांवों से हुआ जो बर्तन, लकड़ी के सामान तथा नमक का निर्माण करने में विशेषज्ञ थे। ये निगम बज़ार वाले कस्बे थे, इस तथ्य की सत्यता इस बात से भी सिद्ध होती है कि बाद के काल के पाए गए सिक्के दर्शाते हैं कि ये निगम में बनाए गए हैं। कभी-कभी साहित्यिक ग्रंथों में नगरों में "निगम" शब्द का प्रयोग उस स्थल के लिए हुआ है जहां पर दस्तकार और कारीगर रहते और काम करते थे।

नगर — साहित्य में कस्बे या शहर के लिए प्रयोग होने वाला यह सबसे अधिक सामान्य शब्द है। इस शब्द का प्रथम बार प्रयोग तेत्रिरिया अरण्येक में हुआ। यह ग्रंथ सातवीं शताब्दी ई. पू. से छठी शताब्दी ई. पू. के समय में रचा गया। एक अन्य शब्द महानगर का प्रयोग नगरों के लिए हुआ है। ये केन्द्र पुर के राजनैतिक कार्य – कार्यकलाप तथा निगम के व्यापारिक कार्यकलाप का समन्वित रूप थे। इन शहरों में राजाओं, व्यापारियों तथा प्रचारकों का निवास था। बौद्ध साहित्य में 6 महानगरों का संदर्भ आता है। इनमें से अधिकतर मध्य गंगा घाटी में स्थित थे। ये राजगृह, चम्पा, काशी, श्रावस्ती, साकेत और कोशाम्बी थे। पाटन, स्थानीय आदि दूसरे शब्द हैं जिनको कस्बे व नगर के लिए प्रयोग किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पुर व दुर्ग सबसे पुराने ऐसे शब्द हैं जिनको भारतीय साहित्य में कस्बे या नगर के प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है। शेष शब्दों का प्रयोग बाद के काल में हुआ। यह हमारे लिए महत्वपूर्ण है कि इन दोनों शब्दों का प्रयोग बस्तियों की घेरेबंदी के लिए किया गया है। इसका यह भी तात्पर्य हो सकता है कि राजा और उसके समर्थक घेरेबंद बस्तियों में रहते थे। वे आसपास की बस्तियों से टैक्स वसूल करते थे। उनकी धन संचय व विलासिता की वस्तुओं को एकत्रित करने की क्षमता के कारण व्यापार का फैलाव संभव हो सका। इन किलेबंद बस्तियों की बदौलत विभिन्न सामाजिक समूहों में संबंधों की व्यवस्था का विकास हुआ। अंतत: इसके कारणवश नगरों का उद्भव हुआ। इस विचार के समर्थन में यह तथ्य भी है कि ब्राह्मणिक परम्परा के अनुसार अनेक नगरों की आधारशिला विशेष राजाओं द्वारा रखी गई। जैसे कि कुसम्बा नाम से जाने वाले राजा ने कोशाम्बी नाम के नगर को बसाया। इसी प्रकार हस्तिन ने हस्तिनापुर को बसाया और श्रावास्ता ने श्रावस्ती की आधारशिला रखी। बौद्ध साहित्य में नगरों का संबंध मुनियों, पेड़-पौधों व जानवरों से है। उदाहरण के लिए, कपिलवस्तु को यह नाम कपि मुनि के नाम पर दिया गया। कहा जाता है कि कोशाम्बी को यह नाम उस क्षेत्र में कुशम्ब नाम के वृक्षों के उगने के बाद दिया गया। परन्तु राजाओं द्वारा शहरों की स्थापना की परम्परा ही अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसा कहा जाता है कि पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ नाम के नगर को बसाया। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण के काल में भी शासक परिवार के राजकुमारों ने अनेक नगरों को बसाया।

आगामी काल में राजनैतिक केन्द्रों में से कुछ काफी बड़े व्यापारिक केन्द्र बन गए। जल्दी ही, ऐसे नगर जो केवल राजनैतिक केन्द्र थे, राजनैतिक तथा वाणिज्य केन्द्रों की छायामात्र हो गए। जैसे कि राजधानी हस्तिनापुर ने कभी भी ऐसी सम्पन्नता को प्राप्त नहीं किया, जैसी कि काशी या कौशाम्बी को प्राप्त थी। जब दूर-दराज के स्थलों से व्यापार काफी बढ़ जाता था तो राजनैतिक लोग व्यापारियों पर टैक्स लगाकर अपने खजाने को सम्पन्न करते थे। कम से कम दो उदाहरण ऐसे हैं जिनमें राजनैतिक राजधानियाँ उन स्थानों में परिवर्तित की गईं जो

महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों पर स्थित थे। कोशल राज्य की राजधानी को अयोध्या से श्रावस्ती ले जाया गया और मगध राज्य की राजधानी को राजगृह के स्थान पर पाटलिपुत्र को बनाया गया। यह व्यापारिक व्यवस्था के उद्भव के महत्व को स्पष्ट करता है जो प्राचीन उत्तर पथ के उस हिस्से में फैला हुआ था जो हिमालय की तलहटी और बाद में तक्षशिला को राजगृह से जोड़ता था। इसी प्रकार, पाटलिपुत्र ऐसी जगह पर स्थित था जहां से वह गंगा नदी से गुज़रने वाले व्यापारिक रास्ते का लाभ उठा सकता था। राजाओं तथा व्यापारियों द्वारा दिया जाने वाला संरक्षण ऐसा कारण था जिससे कि प्राचीन भारत में नगरों का विकास हुआ। इस काल का साहित्य व्यापारियों के काफिलों के वर्णन से भरा पड़ा है, जो दूर स्थलों पर व्यापार के लिए जाते थे। धनी व्यापारी भी राजाओं के साथ-साथ महात्मा बुद्ध के मुख्य अनुयायी थे।

15.4.2 प्राचीन भारत में नगर की छवि

निम्नलिखित विवरण कुछ बाद के काल के बौद्ध और ब्राह्मणिक साहित्यिक ग्रंथों में आये संदर्भों पर आधारित है। दिव्यावदान और अपस्तामबर धर्म-सूत्र जैसी पुस्तकें हमें उस समय के नगरों के विषय में जानकारी उपलब्ध कराती हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य नगरों की आदर्श छवि प्रस्तुत करता है। रामायण में वर्णित अयोध्या या बौद्ध ग्रंथों में वर्णित वैशाली बिल्कुल आदर्श लगेंगे। अगर उनके विवरण का गहराई से अध्ययन किया जाए तो आदर्श रूप में नगरों का वर्णन बिल्कुल शतरंज के बोर्ड की भांति किया गया है। ऐसी सड़कें थी जिनके नाम बहुत से दस्तकारों के नाम पर थे। नगरों की घेरेबंदी सुरक्षित दीवारों तथा खाइयों द्वारा की गई थी। चौड़ी सड़कें, रंगीन पताकाओं से सुसज्जित ऊंचे भवन, व्यस्त बाज़ार, फूलों वाले बाग, कमलों व हंसों के साथ पानी से भरे तालाब इस विवरण में आते हैं। पुरुषों की अच्छी वेश-भूषा तथा नाचती व गाती सुन्दर महिलाएँ शहर का चित्रण पूरा करती हैं। आदर्श शहरों का यह असीमित विवरण हमें ऐसा अपर्याप्त विचार देता है जिसके आधार पर प्राचीन भारत के शहरों की वास्तविक स्थिति का बोध नहीं होता। अन्य बिखरे हुए सन्दर्भों की मदद से नगरों के विषय में हम एक अधिक उचित राय बना सकते हैं।

15.4.3 नगर का भ्रमण

ऐसा प्रतीत होता है कि नदियों के लम्बे मार्गों के किनारों अथवा लम्बे स्थल मार्गों के संगम पर नगरों का विकास हुआ। जब आप शहर की सड़कों से गुजरेंगे तब आप क्या पायेंगे? समकालीन ग्रन्थ नगरों की जीवन्त छवि प्रस्तुत करते हैं। घोड़ों की टापों से उड़ती धूल के अम्बार और व्यापारियों के काफिले जिनको पवित्र ब्राह्मण बहुत कृपा की दृष्टि से देखते थे। दुकानों के आसपास लोगों की भीड़ चिल्ला-चिल्लाकर खाने की चीजें जैसे कि आम, कटहल, केले, मिसरी, पके चावल आदि की बिक्री करती थी। सस्ते आभूषण, शंख वाले कंगन तथा फूलों को बेचने वाली महिलाओं का कोलाहल एवं कलकल की आवाजें हवा में तैरती रहती थीं। अगर किसी को शराब की ज़रूरत हो तो फिर बहुत से किस्म की शराब की दुकानें मिल जायेंगी। घरों का निर्माण अक्सर मिट्टी व लकड़ी से होता था तथा उसकी खपरैल वाली छत होती थी। इस प्रकार के घरों को गंगा के मैदान के गांवों में आज भी देखा जा सकता है। कुछ मामलों में घरों का निर्माण पत्थर और पक्की ईटों से भी किया जाता था। महिलाओं को झरोखों से झांकते हुए देखा जा सकता था। कभी-कभी कोई वेश्याओं के दर्शन भी कर सकता था। अगर कोई जुआ खेलने का शौकीन था तो उसके लिए इसकी भी व्यवस्था थी। राजा और उसकी सेना के हाथियों व रथों पर सवार जुलूसों को सड़कों पर निकलते हुए देखा जा सकता था। शहर के कुछ भागों में सेना को धनुर्विद्या को सीखते हुए, हाथियों को परीक्षण देते हुए और युद्ध कला में कौशलता को बढ़ाते हुए देखा जा सकता था। गेरूवे व सफेद वस्त्रों को धारण किए साधुओं के झुंड के झुंड नगर में घूमते हुए देखे जा सकते थे और कभी-कभी ये साधु नग्न अवस्था में भी घूमते रहते थे। ये घुमक्कड़ सन्यासी इसी समय में उदित विभिन्न सम्प्रदायों से संबंधित थे और इनको जो उपवन या बाग दिए गए थे उनमें रहते हुए इनको विभिन्न धार्मिक सवालों पर उपदेश देते हुए देखा जा सकता था। श्रोताओं की सभा में विभिन्नता होती थी। कभी-कभी यह सभा केवल धनी व्यापारियों और राजकुमारों की होती थी और कभी-कभी उन लोगों की होती जो समाज के निर्धनतम वर्ग से आते थे। धनी लोग इन सन्यासियों को खुल कर धन देते थे। उपवनों एवं धार्मिक स्थलों पर इन सन्यासियों का पूर्ण अधिकार होता था और ये भी नगर के जीवन का एक अंग थे।

15.4.4 विनिमय की वस्तुएँ

बाज़ारों में उपयोगी वस्तुओं की बिक्री एवं खरीदारी बड़े पैमाने पर होती थी। लोगों को लोहे, तांबे, टिन व चांदी आदि धातुओं के बने उपकरणों तथा औजारों को खरीदते हुए देखा जा सकता था। नमक के उपार्जन तथा बेचने के विशेषज्ञ व्यापारियों के गुटों को सड़क के उस टुकड़े पर, जो उनको दे दिया गया था, देखा जा सकता था। काशी के सूती कपड़ों की ओर खरीदने वालों की काफी बड़ी संख्या आकर्षित होती थी। उत्तर-पश्चिम गंधार प्रदेश से आने वाले ऊनी कम्बलों को केवल धनी लोग खरीदते थे। सिन्ध और कम्बोज से आयात होने वाले घोड़ों की भी बिक्री की जाती थी। यहां पर उन दिनों केवल समाज के उच्च धनी लोग खरीदार होते थे। शंख से बनी चूड़ियां, सोने से बने सुन्दर आभूषण, कंघियाँ, हाथी दांत से निर्मित आभूषण और कीमती पत्थरों की बहुत अधिक मांग कुलीन वर्ग में थी।

समकालीन स्त्रोत इस ओर भी संकेत करते हैं कि प्रत्येक सामान को अलग सड़क पर बेचा जाता था। जो उसका उत्पादन करते थे या उसको लाते थे वही बेचते भी थे। विभिन्न प्रकार के सामानों को बेचने की कोई दुकान नहीं थी। विभिन्न प्रकार के व्यापारी होते थे, जैसे कि दुकानदार (अयानिका), खुदरा (क्रय-विक्रय) और धन विनियोक्ता (सेठी-गहपति)। धनी लोग सिक्के का उपयोग भी करते थे। चांदी का सिक्का सतमन अधिकतम मूल्य का था। उसके बाद कर्षपण का महत्व था। तांबे के माशाल और ककणि कम मूल्य के सिक्के थे।

नगरों की इस चमक-दमक के बीच गरीब लोगों का वह वर्ग था जिसके विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। एक बोद्ध जातक कथा में वर्णन है कि एक व्यापारी की बेटी के द्वारा एक चण्डाल (जो लोग जाति व्यवस्था से बाहर थे) को देखने पर प्रदूषण के डर से उसकी आंखों को धोया गया। नगरों के उदय के साथ-साथ धोबियों, मेहतरों, भिखारियों तथा भंगियों का वर्ग भी अस्तित्व में आया। भंगियों और शवों को दफनाने वालों की सेवाएं शहरों के लिए आवश्यक थीं। फिर भी ये लोग समाज के सबसे निर्धन तथा अधिकार-विहीन लोग थे। जाति व्यवस्था से बहिष्कृत ये लोग नगरों के बाहर अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार की किसी आशा के बिना रहते थे। सामुदायिक समाज के पतन और शासकों द्वारा उत्पादन पर बढ़ती हुई मांगों के कारण भिखारियों के गुटों की संख्या बढ़ी। एक कहानी में बताया गया है कि दिन में राजा के कारिन्दे गांव को लूटते थे और रात को लुटेरे।

15.5 पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार नगर

हमें जो साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं उनमें आगामी शताब्दियों में बहुत से परिवर्तन हुए और उनमें कुछ न कुछ जोड़ा गया। हमें जो लिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं वे एक हज़ार वर्ष से भी कम पुराने हैं। इसलिए इन ग्रंथों में से प्रारंभिक काल के इतिहास के विवरण को बाद के काल के विवरण को अलग करना कठिन है। जो सूचनायें हमें उत्खनन से उपलब्ध विवरणों से प्राप्त हुई हैं वे इस काल के नगरों के विषय में कुछ अधिक ठोस आधार प्रदान करती हैं। क्योंकि पुरातात्विक आंकड़ों को अधिक निश्चितता के साथ कालबद्ध किया जा सकता है। यह भी है कि साहित्यिक विवरणों में नगरों की ऐश्वर्यता एवं चमक-दमक को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है। उत्खनन से प्राप्त सामग्री में इस प्रकार की पक्षता नहीं होती है। अब हमें यह देखना है कि उत्खनन से प्राप्त विवरण से किस प्रकार की सूचना प्राप्त हुई है।

700 ई. पू. के लगभग, अयोध्या, कोशाम्बी और श्रावस्ती जैसी छोटी बस्तियां अस्तित्व में आई। इन बस्तियों में रहने वाले लोग विभिन्न प्रकार की मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। छठी शताब्दी ई. पू. के आसपास इस सारे क्षेत्र के निवासी इस शैली के मृदभांडों के साथ-साथ एक विशेष प्रकार के चमकदार परत वाले मृदभांडों का उपयोग करने लगे। इस प्रकार के मृदभांड को उत्तरी काली पॉलिश वाले मृदभांडे (NBPW) कहते हैं। यह उच्च किस्म के मृद-भांड इस बात का प्रमाण हैं कि छठी शताब्दी ई. पू. में गंगा घाटी के नगरों में व्यापक सांस्कृतिक समरूपता थी। शायद इन मृदभांडों का कुछ ही स्थलों पर निर्माण होता था और दूसरे स्थलों को इसका व्यापारियों के द्वारा निर्यात किया जाता था। पुरातात्विक स्थलों पर जो

दूसरी वस्तु प्रकट होनी प्रारम्भ होती है वह इस काल के सिक्के हैं। प्राचीन भारत में इस काल में प्रथम बार सिक्कों का प्रयोग होना शुरू हुआ। चांदी और तांबे से सिक्कों का निर्माण होता था और इन सिक्कों को सामान्यत: पंच चिन्ह वाले सिक्के कहा जाता है। इन पर एक ओर विभिन्न प्रकार के प्रतीकों को बनाया गया है प्रारम्भ में इन सिक्कों को संभवत: व्यापारियों ने जारी किया। सिक्कों की प्रणाली के लागू हो जाने के कारण संगठित व्यापार को बढ़ावा मिला। उत्खनन वाले स्थलों पर तांबे-लोहे के मिश्रित इस काल के पंच चिन्ह वाले कुछ ऐसे सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर कुछ नहीं लिखा है। वस्तु विनिमय व्यवस्था में दो व्यक्ति अपने उत्पाद के माध्यम से विनिमय करते हैं। मानों कि किसी व्यक्ति के पास गाय है जिसके विनिमय से वह भूसा खरीदना चाहता है और एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पास भूसा है लेकिन वह भूसे के बदले चावल खरीदना चाहता है। अत: इस मामले में वस्तु विनिमय को लागू नहीं किया जा सकता। जबकि सिक्के खरीदने और बेचने के लिए एक निश्चित मूल्य माने जाते थे। कोई भी वस्तु खरीदने के लिए गाय ले जाने की अपेक्षा सिक्कों को ले जाना भी अधिक सरल था। धन प्रणाली के लागू हो जाने के कारण अन्तत: महाजन वर्ग का उद्‌भव हुआ।

इस समय की बड़ी बस्तियों में घर बनाने के लिए पक्की ईटों का प्रयोग होने लगा था। घरों से निकले गंदे पानी के लिये गढ़े बनाये जाते थे जिनमें पकी मिट्टी के बड़े पात्र रखे जाते थे। यह एक नियोजित तरीके की ओर संकेत करते हैं। इससे पहले काल में लोग कच्ची ईटों से निर्मित झोपड़ियों में रहते थे। बड़े आकार की बस्तियों के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आबादी का घनत्व बढ़ रहा था। कुछ स्थानों से नाली तथा मल स्थलों के भी प्रमाण मिले हैं।
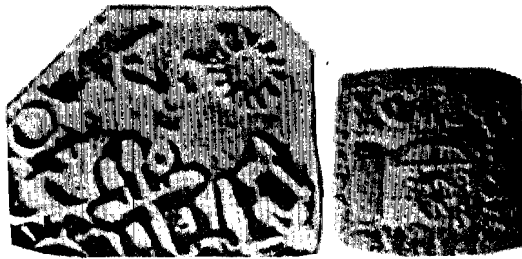
चित्र 4 पंच चिन्ह वाले सिक्के
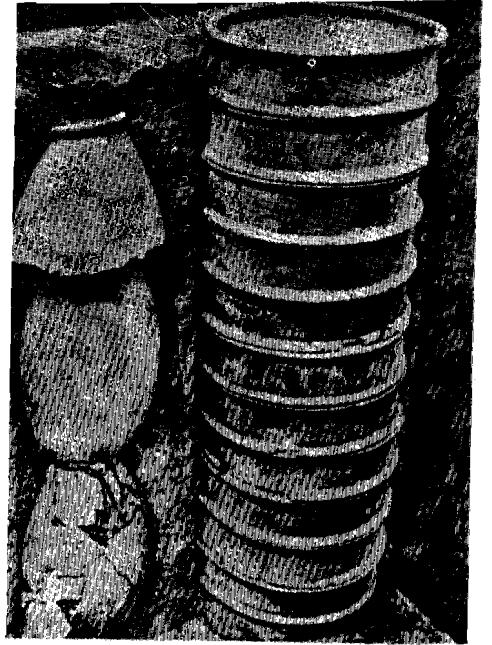
चित्र 5 प्राचीन नगरों से प्राप्त पानी सोखने के गढ़े

उत्खनन से जो सामग्री मिली है उससे स्पष्ट है कि इस काल के लिए साहित्य में नगरों से संबंधित जो विवरण है उसको काफी बढ़ा-चढ़ाकर दिया गया है या फिर वह बाद के समय के नगरों के लिए है। नगरों के विषय में प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि किसी भी नगर को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था, जबकि साहित्यिक विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के नगरों को योजनाबद्ध तरीके से बसाया गया था। तक्षशिला शहर के विशाल स्तर पर किए गए उत्खनन से स्पष्ट होता है कि इस नगर को शायद आठवीं-सातवीं शताब्दी ई. पू. में बसाया गया था। योजनाबद्ध नगर बसाने का काम दूसरी शताब्दी ई. पू. में ही अस्तित्व में आया। इसी तरह साहित्य में बार-बार वर्णन आया है

कि अयोध्या और वैशाली जैसे नगरों का क्षेत्रफल 30 से 50 वर्ग किलोमीटर था। लेकिन उत्खनन से पता चलता है कि इनमें से कोई भी नगर 4 से 5 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल से अधिक नहीं था। इसी प्रकार, विशाल महलों एवं चौड़ी सड़कों का वर्णन भी अतिरंजित मालूम होता है। कोशाम्बी के महल की संरचना के अतिरिक्त छठी शताब्दी ई. पू. के अन्य किसी भी महल की संरचना का विवरण नहीं मिलता। अधिकतर घर सामान्य झोंपड़ियों की भांति थे। इस काल का कोई भी ऐतिहासिक भवन नहीं मिलता है। प्रारंभिक काल के अनेक नगरों जैसे कि उज्जैन, कोशाम्बी, राजगृह आदि की किलेबंदी की गई थी। ऐसा लगता है कि युद्ध के भय से किलेबंदी की जाती थी। नगरों की किलेबंदी से यह भी लगता है कि इसके द्वारा नगरीय जनता का आबादी के शेष भाग से स्पष्ट विभाजन हो जाता था। इससे जनता पर राजा सरलता के साथ नियंत्रण कर सकता था। इसके द्वारा साहित्य में वर्णित उस तथ्य की भी पुष्टि होती है जिसमें पुर का तात्पर्य बस्ती की किलेबंदी से था और जो प्राचीन भारत में प्रारंभिक नगरीय बस्तियों के रूप थे।

अब ऐसा विश्वास किया जाता है कि विशाल महलों के साथ सम्पन्न नगर मौर्य काल के दौरान अस्तित्व में आये। हमें जो साहित्य उपलब्ध है उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि मौर्य काल के नगरों को स्तर मानकर उससे पूर्व के काल के नगरों का वर्णन किया गया है।

बोध प्रश्न 2

1) समकालीन साहित्य में वर्णित नगरों पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) पुरातात्विक साक्ष्य नगरों के विषय में क्या बताते हैं ? दस पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित कथनो को पढ़कर सही (✓) या गलत (×) का चिन्ह लगाइए:

i) जैसे वृक्षों के नाम पर नगरों का नामकरण होता था उसी प्रकार राजाओं के नाम पर भी नगरों के नामकरण की परम्परा थी।

ii) प्राचीन ग्रंथों से नगरों का पूर्णतया सही विवरण प्राप्त नहीं होता है।

iii) नगरों के अस्तित्व में आने से भिखारियों, भंगियों और अन्य दरिद्र लोगों के गुट समाप्त हो गए।

iv) सिक्कों की प्रणाली लागू हो जाने से वस्तु विनिमय समाप्त हुआ तथा संगठित व्यापार सुगम हुआ।

15.6 सारांश

इस इकाई में आपने छठी शताब्दी ई. पू. में नगरों के उद्‌भव के विषय में पढ़ा। नगर की उत्पत्ति दो निर्णायक प्रक्रियाओं का परिणाम थी जिसमें प्रथम है मनुष्य का प्रकृति के साथ रिश्ता अर्थात लोहे का उपयोग और धान की रोपाई की तकनीक की जानकारी हो जाना जिसके कारण गंगा घाटी के क्षेत्र में लोगों ने कृषि पैदावार बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली। दूसरी प्रक्रिया थी, छठी शताब्दी ई. पू. में समाज की आंतरिक संरचना में परिवर्तन होना। इसका तात्पर्य यह था कि शासक जातियां जैसे कि क्षत्रिय और ब्राह्मण, व्यापारिक वर्ग के साथ मिलकर अतिरिक्त खाद्य उत्पादन और अन्य सामाजिक उत्पाद पर अधिकार प्राप्त कर लेते थे। जिन स्थानों पर धनी व ताकतवर लोग रहते थे, उनको शहर या नगर कहा जाता था। यह निश्चित है कि इन लोगों की उपस्थिति का अर्थ था कि उन स्थानों पर बड़ी संख्या में गरीब लोगों की उपस्थिति होना। इसी कारणवश कुछ विद्वानों का मत है कि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति इस नगरीय दरिद्रता के कारण हुई थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में नगरों को पुर, पाटन व नगर जैसे विभिन्न शब्दों के रूप में वर्णित किया गया है। फिर भी साहित्य में नगरों के शान-शौकत एवं आकार के लिए जो विवरण मिलता है, वह अतिरंजित प्रतीत होता है। प्राचीन नगर स्थलों की खुदाई से भी लगता है कि यह साहित्यिक विवरण अतिरंजित हैं।

15.7 शब्दावली

भीतरी प्रदेश — वह क्षेत्र जो शहर के प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आता है और दोनों एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।

टैक्स (कर) — वह धन जिसको शासक, व्यक्तियों या गुटों से शक्ति के बल पर स्थायी आधार पर प्राप्त करते हैं।

नज़राना — परतंत्रता का बोध कराने के लिए कभी-कभी दिया जाने वाला कर।

राज्य-समाज — ऐसा समाज जिसमें शासक और शासित, अमीर और गरीब की उपस्थिति हो।

रोपाई द्वारा खेती — इस विधि के अनुसार, धान के पौधे को एक जगह पर उगाया जाता है और वहां से उखाड़ कर उसको पानी भरे खेतों में लगा दिया जाता है, जहां पर वह बढ़ता है और फसल देता है। चावल की शुष्क खेती में बीज खेतों में बिखरा कर बोये जाते हैं। रोपाई द्वारा धान की खेती से उपज अधिक होती है।

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग

2) i) × ii) ✓
iii) × iv) ✓

3) आपको अपने उत्तर में निम्नलिखित मुख्य-मुख्य बातें बतानी चाहिए:

गैर कृषक आबादी का प्रभुत्व, नगर के पास के बड़े क्षेत्र के साथ सम्बन्ध से लाभ उठाना, धार्मिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करने का केन्द्र, धन और स्तरों में व्यापक अंतर और केन्द्रीकृत प्रशासनिक इकाई का अस्तित्व। भाग 15.2 को देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपको अपने उत्तर में बहुत से शब्दों की व्याख्या करनी चाहिए (जैसे कि पुर, दुर्ग, निगम, नगर) इनका प्रयोग साहित्य में किया गया है और इनके अन्तर भी बताइए। भाग 15.4 देखिए।

2) आपको नये प्रकार की मिट्टी के बर्तनों के दृष्टांत देने चाहिए (उत्तर वाली पॉलिश वाले बर्तन)। सिक्कों का प्रारंभ, और घरों के लिए पक्की ईटों का उपयोग। यह भी बताइए कि साहित्य में किस प्रकार से नगरों का चित्रण बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है और उसको पुरातात्विक साक्ष्य ने कैसे शुद्ध किया है। देखिए भाग 15.5

3) i) ✓ ii) ✓
iii) × iv) ✓